केवलज्ञान और केवलदर्शन, दोनों उपयोग युगपत् नहीं होते

—कन्हैयालाल लोढ़ा

श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में एक आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर को छोड़कर सर्वसम्मत मत है कि केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दोनों उपयोग युगपत् नहीं होते जबकि दिगम्बर मान्यता में अधिकांश आचार्यों का मत है कि ये दोनों उपयोग युगपत् ही होते हैं। परन्तु श्वेताम्बर आगम व ग्रंथों में अपनी मान्यता का प्रतिपादन करने वाले स्पष्ट सूत्र मेरे देखने में नहीं आये, प्रायः अर्थापत्ति अनुभव से ही यह मान्यता पुष्ट करते हैं। इसके विपरीत दिगम्बर परम्परा के आगम 'कषाय पाहुड' आदि ग्रन्थों एवं इनकी टीकाओं में दोनों उपयोग युगपत् नहीं होते इसके अनेक स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं, इन्हीं में से कुछ यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

(क) गुणधराचार्य प्रणीत कषायपाहुड मूल ग्रन्थ की गाथा १५ से लेकर २० गाथा तक जिन मार्गणाओं के अल्प बहुत्व के रूप में जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा गया है। इसमें उत्कृष्ट काल के अल्पबहुत्व में कहा गया है—

चक्षुदर्शनोपयोग के उत्कृष्ट काल से चक्षु ज्ञानोपयोग का काल दूना है। उससे श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा इन्द्रियों का ज्ञानोपयोग, मनोयोग, वचनयोग, काययोग आदि स्पर्शनेन्द्रिय ज्ञानोपयोग का उत्कृष्ट काल क्रमशः विशेष अधिक है। स्पर्शनेन्द्रिय के ज्ञानोपयोग से अवायज्ञान का उत्कृष्ट काल दूना है। अवायज्ञानोपयोग के उत्कृष्ट काल से ईहा-ज्ञानोपयोग का उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे श्रुतकाल का उत्कृष्ट काल दूना है। श्रुतज्ञान के उत्कृष्ट काल से श्वासोच्छ्वास का उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, कषाय सहित जीव के शुक्ल लेश्या का उत्कृष्ट काल स्वस्थान में समान होते हुए भी प्रत्येक का उत्कृष्ट काल श्वासोच्छ्वास से विशेष अधिक है। केवलज्ञान के उत्कृष्ट काल से एकत्व वितर्क अवीचार ध्यान का उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इनसे पृथक्त्व वितर्क सवीचार ध्यान का काल दूना है। इससे प्रतिपाती सूक्ष्म सांपराय, उपशम श्रेणी में चढ़ने वाले का सूक्ष्म सांपराय, क्षपक का सांपराय का उत्कृष्ट काल क्रमशः विशेष अधिक है। सूक्ष्म सांपरायिक जीव के उत्कृष्ट काल से मान कषाय का उत्कृष्ट काल दूना है। इससे क्रोध, माया, लोभ, क्षुद्रभव-ग्रहण, कृष्टिकरण, संक्रामक, अपवर्तना का उत्कृष्ट काल क्रमशः विशेष अधिक है। इससे उपशांत कषाय का काल दूना है। इससे क्षीण कषाय का उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इससे चारित्रमोहनीय के उपशामक का उत्कृष्ट काल दूना है। इससे चारित्र मोहनीय के क्षपक का उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि दर्शनोपयोग सभी इन्द्रियों, मन, वचन, काया, अवाय और ईहा व श्रुतज्ञान इनका उत्कृष्ट काल श्वासोच्छ्वास के उत्कृष्ट काल से कम होता है और केवलज्ञानोपयोग व केवलदर्शनोपयोग का उत्कृष्ट काल एक श्वासोच्छ्वास से अधिक और दो श्वासोच्छ्वास के उत्कृष्ट काल से कम होता है। अर्थात् दो श्वासोच्छ्वास के उत्कृष्ट काल के भीतर में केवलज्ञान व केवलदर्शन का उपयोग बदल जाता है। अतः जहाँ केवलज्ञान व केवलदर्शन के उपयोग का काल अन्तर्मुहूर्त दिया है वहाँ यह अन्तर्मुहूर्त दो श्वासोच्छ्वास के उत्कृष्ट काल से कम ही समझना चाहिए। यह काल सूक्ष्म सांपराय, क्रोध, मान, माया, लोभ क्षुद्रभव ग्रहण काल से भी कम है। यह सूत्र के आगे के भाग से स्पष्ट है। इन्हीं गाथाओं की टीका के प्रसंग में आचार्य श्री वीरसेन स्वामी ने उस समय विद्यमान अन्य प्रमाण केवलज्ञान व केवलदर्शन के युगपत् नहीं होने को पुष्ट करने वाले दिये हैं यथा—

केइं भणंति जइया जाणइ तइया ण पासइ जिणोत्ति।
सुत्तमवलंवमाणा तित्थयरासायणा भीरू॥ (३४)॥

—कषायपाहुड पुस्तक।

अर्थात् तीर्थंकर की आसादना से डरने वाले आचार्य 'जं समयं जाणत्ति नो तं समयं पासति जं समयं पासति तं नो समयं जाणति'

इस प्रकार के सूत्र का अवलंबन लेकर कहते हैं कि जिन भगवान् जिस समय जानते हैं उस समय देखते नहीं हैं और जिस समय देखते हैं उस समय जानते नहीं हैं।

—कषायपाहुड पुस्तक, पृष्ठ ३२०

(ख) **"केवलणाण केवलदंसणाण मुक्कस्स उवजोग कालो अंतोमुहुत्तमेत्तो त्ति भणिदो तेण णव्वदे जहा केवलणाण दंसणाणामुक्कमेण उत्तीण होदि त्ति।"**

—कषायपाहुड पुस्तक, पृष्ठ ३१९

अर्थात् चूंकि केवलज्ञान और केवलदर्शन का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, इससे जाना जाता है कि केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्रवृत्ति एक साथ नहीं होती। यदि केवलज्ञान और केवलदर्शन की एक साथ प्रवृत्ति मानी जाती तो तद्भवस्थ[1] केवली के केवलज्ञान और केवलदर्शन के उपयोग का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण नहीं होना चाहिए किन्तु कुछ कम पूर्व कोटि प्रमाण होना चाहिए क्योंकि गर्भ से लेकर आठ वर्ष काल के बीत जाने पर केवलज्ञान सूर्य की उत्पत्ति देखी जाती है।

उपर्युक्त विवेचन में 'केवलज्ञान व केवलदर्शन के उपयोग का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है।' ये मूल वाक्य जिज्ञासा के रूप में कहे गये हैं। परंतु जिज्ञासा का समाधान करते हुए टीकाकार श्री वीरसेनाचार्य ने इन सूत्र वाक्यों को न तो नकारा है और न अप्रामाणिक या मिथ्या कहा है प्रत्युत इन्हें स्वीकृति प्रदान कर आगे भी पुष्ट किया है।

(ग) **असरीरा जीवघणा उवज्जुत्ता दंसणे य णाणे य।**
सायारमणायारं लक्खणमेयं तु सिद्धाणं॥ (१७)॥

२–९–५९ धवला ७, पृष्ठ ९८.

अशरीर अर्थात् कायरहित शुद्ध जीव प्रदेशों से घनीभूत, दर्शन और ज्ञान में अनाकार और साकार रूप से उपयोग रखने वाले होते हैं, यह सिद्ध जीवों का लक्षण है।

इस गाथा से यह प्रमाणित होता है कि 'सिद्धों' में भी ज्ञान और दर्शन ये दोनों उपयोग होते हैं। यदि सिद्धों में ये दोनों उपयोग युगपत् होते तो इनका उत्कृष्ट काल 'अनन्त काल' होना चाहिये था कारण कि सिद्ध जीव का काल अनन्त व शाश्वत होता है। परन्तु कषाय पाहुड की मूल गाथा में केवलज्ञानोपयोग और केवलदर्शनोपयोग का उत्कृष्ट काल दो श्वास से कम अर्थात् अन्तर्मुहूर्त ही

१ ध्यान रहे कि मूल गाथा में तद्भवस्थ शब्द नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बताया गया है जो दोनों उपयोगों के युगपत् न मानने पर ही सम्भव है।

यहाँ पर यह बात विशेष ध्यान देने की है कि जैनागमों में कहीं यह नहीं कहा है कि ज्ञान के समय दर्शन नहीं होता है और दर्शन के समय ज्ञान नहीं होता है प्रत्युत यह कहा है कि ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग ये दोनों उपयोग किसी भी जीव को एक साथ नहीं होते। क्योंकि ज्ञान और दर्शन ये दोनों गुण आत्मा के लक्षण हैं। अतः ये दोनों गुण आत्मा में सदैव विद्यमान रहते हैं। इनमें से किसी भी गुण का कभी अभाव नहीं होता है। यदि ज्ञान या दर्शन गुण का अभाव हो जाये तो चेतना का ही अभाव हो जाये; कारण कि गुण के अभाव होने पर गुणी के अभाव हो जाने का प्रसंग उपस्थित हो जाता है। अतः चेतना में ज्ञान और दर्शन ये दोनों गुण सदैव विद्यमान रहते हैं। परन्तु उपयोग इन दोनों गुणों में से किसी एक ही गुण का होता है।

उपर्युक्त तथ्य से यह भी फलित होता है कि ज्ञान गुण और ज्ञानोपयोग एक नहीं है तथा दर्शन गुण और दर्शनोपयोग एक नहीं है, दोनों में अन्तर है जैसा कि षटखंडागम की धवला टीका पु० २, पृष्ठ ४११ पर लिखा है:—स्व पर ग्रहण करने वाले परिणाम को उपयोग कहते हैं। यह उपयोग ज्ञान मार्गणा और दर्शनमार्गणा में अन्तर्भूत नहीं होता है। इसी प्रकार पन्नवणा सूत्र में भी ज्ञान और दर्शन द्वार के साथ उपयोग द्वार को अलग से कहा है। तात्पर्य यह है कि गुणों की उपलब्धि का होना और उनका उपयोग करना ये दोनों एक नहीं हैं, दोनों में अन्तर है। जैसा कि कषायपाहुड में कहा है :—

दंसणणाणावरणक्खए समाणम्मि कस्स होइ पुव्वयरं।
होज्ज समोउप्पाओ दुवे णत्थि उवजोगा ॥१२७॥

—कषायपाहुड पुस्तक (१) पृष्ठ ३२१

अर्थात् दर्शनावरण और ज्ञानावरण का क्षय एक साथ होने पर पहले केवलदर्शन होता है या केवलज्ञान। ऐसा पूछा जाने पर यही कहना होगा कि दोनों की उत्पत्ति एक साथ होती है पर इतना निश्चित है कि केवलज्ञानोपयोग और केवलदर्शनोपयोग ये दो उपयोग एक साथ नहीं होते हैं।

इस गाथा से यह फलित होता है कि दोनों आवरणीय कर्मों के एक साथ क्षय होने से केवलज्ञान और केवलदर्शन इन दोनों गुणों का प्रकटीकरण तो एक साथ होता है और आगे भी दोनों गुण साथ-साथ ही रहते हैं, परन्तु प्रवृत्ति किसी एक गुण में होती है। गुण लब्धि रूप में होते हैं और उस गुण में प्रवृत्त होना उसका उपयोग है।

आशय यह है कि उपलब्धि और उपयोग ये अलग-अलग हैं। अतः इनके अन्तर को उदाहरण से समझें :—

मानव मात्र में गणित, भूगोल, खगोल, इतिहास, विज्ञान आदि अनेक विषयों के ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता है परन्तु किसी ने गणित व भूगोल इन दो विषयों का ज्ञान प्राप्त किया है तो उसे इन दोनों विषयों के ज्ञान की उपलब्धि है यह कहा जायेगा और अन्य विषयों के ज्ञान की उपलब्धि उसे नहीं है यह भी कहा जायेगा। गणित और भूगोल इन दो विषयों में से भी अभी वह गणित का ही चिन्तन या अध्यापन कार्य कर रहा है, भूगोल के ज्ञान के विषय में कुछ नहीं कर रहा है तो यह कहा जायेगा कि यह गणित के ज्ञान का उपयोग कर रहा है, और भूगोल के ज्ञान का उपयोग नहीं कर रहा है।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसे अभी भूगोल के ज्ञान का अभाव है। उसे इस समय भी भूगोल का ज्ञान उपलब्ध है, इतना अवश्य है कि इस समय उसका उपयोग नहीं कर रहा है। एक दूसरा उदाहरण और लें—एक धनाढ्य व्यक्ति में अनेक वस्तुओं के क्रय करने की क्षमता है परन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसने रेडियो और टेलीविजन ही खरीदा है तथा इस समय यह रेडियो चला रहा है, टेलीविजन नहीं चला रहा है तो यह कहा जायेगा कि उस धनाढ्य व्यक्ति में क्षमता तो अनेक वस्तुओं को प्राप्त करने की है, उपलब्धि उसे रेडियो और टेलीविजन दोनों की है और उपयोग वह रेडियो का कर रहा है। यह क्षमता, उपलब्धि और उपयोग में अन्तर है।

उपलब्धि और उपयोग के हेतु भी अलग-अलग हैं। उपलब्धि या लब्धि, कर्मों के क्षयोपशम या क्षय से होती है और उपयोग लब्धि के अनुगमन करने रूप व्यापार से होता है। जैसा कि उपयोग की परिभाषा करते हुए कहा गया है—

उपयुज्यते वस्तुपरिच्छेदं प्रतिव्यापार्यते जीवोऽनेनेत्युपयोगः—प्रज्ञापना २४ पद। अर्थात् वस्तु के जानने के लिये जीव के द्वारा जो व्यापार किया जाता है, उसे उपयोग कहते हैं।

"उभय निमित्त वशादुत्पद्यमान श्चैतन्यानुविधायी परिणामः उपयोगः इन्द्रिय फलमुपयोग" सर्वार्थसिद्धि अ०२ सूत्र ६ व १८ अर्थात् जो अंतरंग और बहिरंग दोनों निमित्तों से होता है और चैतन्य का अनुसरण करता है ऐसा परिणाम उपयोग है। अथवा इन्द्रिय का फल उपयोग है अथवा "स्व-पर ग्रहण परिणाम उपयोगः" धवलाटीका पु० २ पृ० ४१ अर्थात् स्व-पर जो ग्रहण करने वाला परिणाम उपयोग है।

वत्थु णिमित्तो भावो जादो जीवस्स होदि उवओगो।

—पंचसंग्रह प्रा. १/१६८

अर्थात् वस्तु ग्रहण करने के लिए जीव के भाव का प्रवृत्त होना उपयोग है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह फलित होता है कि ज्ञानावरणीय कर्मों के क्षयोपशम से या क्षय से होने वाले गुणों की प्राप्ति को लब्धि कहते हैं और उस लब्धि के निमित्त से होने वाले जीव के परिणाम या भाव का प्रवृत्त होना, उपयोग है परिणाम या भाव एक समय में एक ही हो सकता है। अतः एक समय में एक ही उपयोग हो सकता है अर्थात् ज्ञानोपयोग के समय दर्शनोपयोग और दर्शनोपयोग के समय ज्ञानोपयोग नहीं हो सकता। परन्तु लब्धियाँ ज्ञान-दर्शन गुण ही नहीं, दान, लाभ, भोग आदि गुणों की भी होती हैं। यही नहीं किसी को भी अनेक ज्ञानों की उपलब्धि या लब्धि हो सकती है परन्तु वह एक समय में एक ही ज्ञान का उपयोग कर सकता है, जैसा कि कहा है—'मतिज्ञानादिषु चतुर्षु पर्यायेणोपयोगो भवति न युगपत' तत्त्वार्थ भाष्य अ० १ सूत्र ३१ अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनपर्यायज्ञान इन चार ज्ञानों का उपयोग एक साथ नहीं हो सकता। किसी को भी एक साथ एक से अधिक ज्ञान का उपयोग नहीं हो सकता। कारण कि ये सब ज्ञान, ज्ञान की पर्यायें हैं और यह नियम है कि एक साथ एक से अधिक पर्यायों का उपयोग सम्भव नहीं है। इसीलिए कहा है कि पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं, सहवर्ती नहीं। अतः चारों ज्ञानों की उपलब्धि एक साथ हो सकती है परन्तु उनका उपयोग क्रमवर्ती होता है सहवर्ती नहीं अर्थात् एक समय एक ही ज्ञान होगा और उस ज्ञान में भी उसके किसी एक भेद का ही ज्ञान होगा दूसरे भेदों का नहीं जैसे अवाय मतिज्ञान का उपयोग होगा तो ईहा, धारणा आदि मतिज्ञान के भेदों का उपयोग नहीं होगा।

अभिप्राय यह है कि जैनागमों में ज्ञान-दर्शन आदि गुणों के एक साथ होने का निषेध नहीं किया गया है। निषेध किया गया है दो उपयोग एक साथ होने का। यहाँ तक कि वीतराग केवली के भी दोनों उपयोग युगपत् नहीं माने हैं जैसा कि कहा है—"सव्वस्स केवलिस्स वि युगपदो णत्थि उपओगो।" —विशेषावश्यक भाष्य ३०९६

यहाँ प्रसंगवशात् यह विचार करना अपेक्षित है कि श्वेताम्बर आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर एवं दिगम्बर आचार्य श्री वीरसेन आदि ने केवली के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों उपयोग युगपत् मानते हैं। यह कहाँ तक युक्तिसंगत है।

इस सम्बन्ध में प्रथम तो मेरा यह निवेदन है कि प्राचीनकाल में सभी जैन सम्प्रदायें केवली में दोनों उपयोगों को युगपत् नहीं मानती थीं जैसा कि कषाय-पाहुड में लिखा है—"केवलगाण केवलदंसणाण मुक्कस्स उवजोगकालो जेण अंतोमुहुत्तमेत्तो त्ति भणिदो तेण णव्वदे जहा केवलणाणदंसणाण-मुक्कमेण उत्तीण होदि त्ति।" कषायपाहुड पु० १ पृ० ३१९, अर्थात् चूँकि केवलज्ञान और केवलदर्शन का उत्कृष्ट उपयोग काल अन्तर्मुहूर्त कहा है इससे जाना जाता है कि केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्रवृत्ति एक साथ नहीं होती। कषायपाहुड के इस कथन से ज्ञात होता है कि उस समय केवली के दोनों उपयोग युगपत् नहीं होने की मान्यता सभी जैन सम्प्रदायों में प्रचलित थी। विशेषावश्यक भाष्य की गाथा ३०९६ में इसे स्पष्ट स्वीकार किया ही है।

केवली के दोनों उपयोग युगपत् होने के समर्थन में धवला टीका पुस्तक १ व १३ तथा कषायपाहुड पु० १ आदि ग्रन्थों में यह युक्ति दी गई है कि केवली के दोनों आवरण कर्मों का क्षय युगपत् होने से दोनों उपयोग भी युगपत् होते हैं और यही युक्ति आचार्य श्री सिद्धसेन ने भी दी है।

इस सम्बन्ध में यह बात विचारणीय है कि छद्मस्थ जीवों के भी दोनों कर्मों के आवरण का क्षयोपशम सदैव रहता है जिससे ज्ञान और दर्शन गुणों की लब्धि प्रकट होती है और उस लब्धि में प्रवृत्ति से उपयोग होता है। यदि कर्मों के आवरणों का क्षयोपशम न हो अर्थात् केवल सर्वघातीस्पर्धकों का ही उदय हो तो न तो ज्ञानदर्शन गुणों की लब्धि होगी और न उपयोग की ही। अतः छद्मस्थ के भी उपयोग दोनों कर्मों के आवरणों के क्षयोपशम से ही होता है। यही तथ्य केवली पर भी घटित होता है। अन्तर केवल इतना ही है कि दोनों कर्मों के क्षयोपशम से छद्मस्थ के ज्ञान-दर्शन गुण आंशिक रूप में प्रकट होते हैं और इन दोनों कर्मों के सम्पूर्ण क्षय से केवली के ज्ञानदर्शन गुण (पूर्ण रूप) में प्रकट होते हैं। इस प्रकार केवली और छद्मस्थ के ज्ञान-दर्शन गुणों में अंशों का ही अन्तर है। अतः जो भी युक्तियाँ केवली के युगपत् उपयोग के समर्थन में दी जायेंगी ये सब युक्तियाँ छद्मस्थ पर भी लागू होंगी और छद्मस्थ के भी दोनों उपयोग युगपत् मानने पड़ेंगे जो श्वेताम्बर-दिगम्बर आदि किसी भी जैन सम्प्रदाय को कदापि मान्य नहीं है। अतः केवली के दोनों उपयोग युगपत् मानने में विरोध आता है। इसी प्रकार छद्मस्थ जीव के दोनों उपयोग युगपत् न मानने के लिए जो भी युक्तियाँ दी जायेंगी वे केवली पर भी लागू होंगी और केवली के दोनों उपयोग युगपत् नहीं होते हैं यह मानना ही पड़ेगा। छद्मस्थ जीव के दोनों उपयोग युगपत् नहीं होते, यह सर्वमान्य सिद्धान्त है। अतः केवली के भी दोनों उपयोग युगपत् नहीं होते यह स्वतः सिद्ध हो जाता है। अतः अन्वय और व्यतिरेक दोनों प्रकार से यह सिद्ध होता है कि केवली के युगपत् उपयोग नहीं होते हैं। सिद्धान्त भी इसका साक्षी है। मैं उपर्युक्त विषय पर अपने विचार ऊपर प्रस्तुत कर चुका हूँ फिर भी मेरा इस सम्बन्ध में किंचित् भी आग्रह नहीं है। आशा है कि विद्वत् जन तटस्थ बुद्धि से विचार कर अपना मन्तव्य प्रकट करेंगे।

श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान
साधना भवन,
ए-९ महावीर उद्यान पथ, बजाज नगर,
जयपुर (राज०) ३०२०१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org